

मनुष्य के पास जितने भी साधन सुख-प्राप्ति के लिए हैं, उन साधनों के रहते हुए भी मनुष्य उतना ही अधिक तनावग्रस्त, दुखी, चिन्तित दिखाई देता है। बौद्धिक एवं वैज्ञानिक यह बात आग्रहपूर्वक कह रहे हैं कि सम्पूर्ण मनुष्य जाति शारीरिक कष्ट से उतनी दुखी नहीं है, जितनी मानसिक ताप से। इससे मुक्ति पाने के लिए ध्यान एकमात्र परमौषधि है। ध्यान के द्वारा मनुष्यों की मानसिक पीड़ा नष्ट की जा सकती है। इसीलिए जागरूक एवं ध्यान-साधना में परिपक्व महापुरुषों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व में ध्यान की ओर मनुष्यों को प्रेरित किया जा रहा है, उन्हें आकृष्ट किया जा रहा है।

## आगम साहित्य में

### ध्यान का स्वरूप

‘ध्यानं आत्मस्वरूप चिन्तनम्’ अर्थात् आत्मस्वरूप का चिन्तन ही ध्यान है। इसमें ध्याता, ध्यान, ध्येय और संवर-निर्जरा ये चार बातें आती हैं।

ध्यान के महत्त्व के विषय में भगवान् महावीर का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—

‘सीसं जहा सरीरस्स जहा मूलं दुमस्स च ।  
सव्वस्स साधु धम्मस्स तहा ध्यानं विधीयते ॥’

—समण सुत्तं ४ (४)

अर्थात् मनुष्य के शरीर में जैसे सिर महत्त्वपूर्ण है, वृक्षों में जैसे जड़ महत्त्वपूर्ण है, वैसे ही साधु के समस्त धर्मों का मूल ध्यान है।

ध्यान के अभ्यास से आत्मीय शक्तियाँ विकसित होती हैं। आत्मा की शुद्ध अवस्था प्राप्त होती है। ध्यान के सम्बन्ध में जैनाचार्यों का मत है कि उत्तम संहनन वाले जीव का किसी पदार्थ में अन्तर्मुहूर्त के लिए चिन्ता का निरोध होता है, वही ध्यान है।

स्थानांग (ठाणांग) सूत्र में चार प्रकार के ध्यान वर्णित हैं— (१) आर्त्त ध्यान (२) रौद्र ध्यान (३) धर्म ध्यान और (४) शुक्ल ध्यान। चारों में प्रथम दो ध्यान आर्त्त और रौद्र संसार भ्रमण कराते हैं। और अन्तिम दो धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान मोक्ष की प्राप्ति करवाने में सहायक होते हैं।

इन चारों प्रकार के ध्यान का अर्थ भी भली प्रकार समझ लेना आवश्यक है।

(१) आर्त्त ध्यान—स्त्री, पुत्र, रत्न, अलंकार, आभूषण एवं समस्त भोग सामग्री के वियोग को बचाने के लिए तथा इन्हीं की प्राप्ति के लिए जो चिन्तन-मनन होता है, उसी का नाम आर्त्तध्यान है।

—पुवाचार्य डॉ० शिवमुनि

भ्रमण संघ के मंत्री

तृतीय खण्ड : धर्म तथा दर्शन

२४१

(२) रौद्र ध्यान—हिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री सेवन एवं अन्य भी सभी प्रकार के कलुषित कर्मों से उत्पन्न परिणाम के कारण जो चिन्तन होता है वही रौद्र-ध्यान है। रौद्र ध्यान में सभी पापाचार सम्मिलित हैं। इस ध्यान के चार उपभेद भी माने गए हैं—  
(अ) हिंसानुबंधी, (ब) मृषानुबंधी, (स) स्तेनानुबंधी तथा (द) संरक्षणानुबंधी। इस प्रकार का ध्यान करने वाला जीव कृपा के लाभ से वंचित, नीच कर्मों में लगा रहने वाला तथा पाप को ही आनंद रूप मानता है। यह ध्यान नतुर्थ गुणस्थान तक रहता है।

(३) धर्मध्यान—स्त्री, पुत्र, अलंकार, आभूषण तथा सभी प्रकार की भोग सामग्री के प्रति ममत्व भाव इस ध्यान में कम होता चला जाता है। धीरे धीरे आत्मचिन्तन की ओर प्रवृत्ति बढ़ती चली जाती जाती है। विद्वान् लोगोंने इसीलिए धर्म-ध्यान को आत्म-विकास का प्रथम चरण माना है। द्वादशांग रूप जिनवाणी, इन्द्रिय, गति, काम, योग, वेद, कषाय, संयम, ज्ञान, दर्शन, लेश्या, भव्याभव्य, सम्यक्त्व, सभी असत्री, आहारक, अनाहारक इस प्रकार १४ मार्गणा, चौदह गुणस्थान, बारह भावना, १० धर्म का चिन्तन करना धर्म ध्यान है। धर्मध्यान को शुक्लध्यान की भूमिका माना गया है। शुक्ल-ध्यानवर्ती जीव गुणस्थान श्रेणी चढ़ना प्रारम्भ कर देता है। धर्म ध्यान के चार भेद माने गए हैं—

(१) आज्ञा विचय—इस ध्यान में सर्वज्ञ प्रवचन रूप आज्ञा विचारी जाती है, चिन्तन करते समय जिनराज की आज्ञा को ही प्रमाण मानना आज्ञा विचय है।

(२) अपाय विचय—अविद्या और दुःखों से मुक्त होने का उपाय सोचना अपाय विचय है।

(३) संस्थान विचय—लोक के आकार, स्वरूप आदि का विचार करना संस्थान विचय है। संस्थान विचय के भी चार उपभेद हैं, (अ) पिंडस्थ—पिंडस्थ ध्यान में शरीर पर विचार किया जाता है, पिंडस्थ ध्यान में पार्थिवी, आग्नेयी, मारुति, वारुणि, तत्व-

रूपवती इन पाँच धारणाओं का चिन्तन किया जाता है।

(व) पदस्थ—पदस्थ ध्यान में पद के साथ सिद्ध अवस्था पर भी चिन्तन किया जाता है। पदस्थ ध्यान में बैठा हुआ योगी ह्रं, अहं तथा ॐ पद का ध्यान करता है, कभी पंच नमस्कार मन्त्र का ध्यान करता है।

(स) रूपस्थ—रूपस्थ ध्यान में अर्हंत की विशेषताओं पर ध्यान किया जाता है। रूपस्थ ध्यान में बैठा हुआ योगी समवसरण में विराजमान अर्हंत परमेष्ठी का ध्यान करता है। कभी उनके सिंहासन तथा छत्रत्रय आदि आठ महाप्रातिहार्यों का विचार करता है। कभी चार घातिया कर्मों के नाश से उत्पन्न हुए अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य इन चार आत्मगुणों का चिन्तन करता है।

(द) रूपातीत—रूपातीत ध्यान में विमुक्त आत्मा के अमूर्तत्व और विशुद्धत्व पर मन केन्द्रित किया जाता है। आठ कर्मों का क्षय हो जाने से सिद्ध आत्मा के आठ गुण (अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, क्षायिक समकित, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, अगुरु-लघुत्व) प्रकट हो जाते हैं और इन गुणों का ही ध्यान किया जाता है। यह ध्यान ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव को होता है, जिसके संपूर्ण कषाय उपशान्त या क्षीण हो गये हैं।

धर्मध्यान के चार लक्षण—

धर्मध्यान के लक्षणों में मुख्य रूप से चार बातें हैं—

(१) आज्ञा रुचि—सूत्र और अर्थ इन दोनों में श्रद्धा रखना।

(२) निसर्ग रुचि—सूत्र और अर्थ में स्वाभाविक रुचि रखना।

(३) सूत्र रुचि—आगम में रुचि रखना।

(४) अगाढ रुचि—साधु के उपदेश में रुचि रखना।

धर्मध्यान में बाह्य साधनों का आधार रहता है।

धर्मध्यान के चार आलम्बन—

(१) वांचना—शिष्य के लिए कर्म निर्जरार्थ सूत्रोपदेश आदि देना।

(२) प्रच्छना—अध्ययन के समय सूत्रों में हुई शंका का गुरु से उसका समाधान प्राप्त करना।

(३) परिवर्तना—सूत्र विस्मृत न हो जाय इस-लिए पूर्व पठित सूत्र का बार-बार स्मरण करना, अभ्यास करना।

(८) अनुप्रेक्षा—सूत्र अर्थ का बार-बार चिन्तन मनन करते रहना। इसके चार भेद हैं।

(अ) एकानुप्रेक्षा—आत्मा एक है।

(ब) अनित्यानुप्रेक्षा—सांसारिक सभी पदार्थ अनित्य हैं, नश्वर हैं—ऐसी भावना करना।

(स) अशरणानुप्रेक्षा—इस विराट विश्व में कोई भी मेरी आत्मा का संरक्षक नहीं है, इस प्रकार का विचार करना।

(द) संसारानुप्रेक्षा—ऐसा कोई भी पर्याय अव-शेष नहीं रहा जहाँ आत्मा का जन्म-मरण नहीं हुआ हो, इस प्रकार का विचार करना। ये भी भेद-उपभेद धर्मध्यान का सुगम बोध कराते हैं।

(४) शुक्लध्यान—जिस ध्यान से आठ प्रकार के कर्मरज से आत्मा की शुद्धि हो जाती है, उसे शुक्लध्यान कहते हैं, इसका उदय सातवें गुणस्थान के बाद ही संभव है। इसके चार उपभेद हैं।

(१) पृथक्त्व वितर्क सविचार—इसमें साधक मनोयोग, वचनयोग और काययोग इन तीनों में से किसी एक योग का आलम्बन होता है। फिर उसे छोड़कर अन्य योगों का आलम्बन लेता है, वह पदार्थ के पर्यायों पर चिन्तन करता है। यह सब उसके आत्मज्ञान पर निर्भर करता है।

(२) एकत्व वितर्क अविचार—इस ध्यान में पूर्व-

गत सूत्र के आधार से उत्पाद व्यय आदि किसी एक ही पर्याय का विचार करना है। विचार करते समय द्रव्य, पर्याय, शब्द योग इनमें से किसी एक का आलम्बन रहता है। इस अवस्था में पदार्थ पर संक्रमण नहीं होता। प्रथम ध्यान में एक द्रव्य या पदार्थ को छोड़कर दूसरे द्रव्य और पदार्थ की प्रवृत्ति होती है। परन्तु दूसरे ध्यान में यह प्रवृत्ति रुक जाती है। शुक्लध्यान के ये दोनों प्रकार सातवें एवं बारहवें गुणस्थान तक होते हैं।

(३) सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपाती—निर्वाण गमनकाल में उसी केवली जीव को यह ध्यान होता है जिसने मन, वचन एवं योग का निरोध कर लिया हो। इस अवस्था में काया को छोड़कर शेष भाग निष्क्रिय हो जाते हैं। यह ध्यान तेरहवें गुणस्थानवर्ती को ही होता है।

(४) व्युपरतक्रिया निवृत्ति—तीन योग से रहित होने पर यह चतुर्थ ध्यान होता है। इस अवस्था में काया भी निःशेष हो जाती है। साधक सिद्ध अवस्था प्राप्त कर लेता है। चौदहवें गुण-स्थान में यह ध्यान होता है। पूर्ण क्षमा, पूर्ण मादं व आदि गुणों के कारण यह अवस्था प्रकट होती है।

शुक्लध्यान के चार लक्षण—

(१) अव्यथम—व्यथा का अभाव होना।

(२) असंमोह—मूर्च्छित अवस्था न रहना, प्रमादी न होना।

(३) विवेक—बुद्धि द्वारा आत्मा को देह से पृथक् एवं आत्मा से सर्व संयोगों को अलग करना।

(४) व्युत्सर्ग—शरीर एवं अन्य उपाधियों का छूट जाना।

शुक्लध्यान के चार आलम्बन—

(१) क्षमा, (२) मुक्ति (निर्लोभता), (३) आर्जव (सरलता) एवं (४) मृदुता (विनम्रता) ये चार शुक्लध्यान के आलम्बन हैं।

तृतीय खण्ड : धर्म तथा दर्शन

२४३

## शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ—

(१) अनन्तवर्तिता—जीव आदि अनादि है, अनन्त योनियों में भटका है और अभी तक इस संसार से इसकी मुक्ति नहीं हो सकी है। यह जीव चारों गतियों (नरक, तिर्यच, मनुष्य, देव) में चक्कर लगाता रहा है। ऐसा विचार अनन्तवर्तिता में है।

(२) विपरिणामानुप्रेक्षा—अधिकांश परिणाम विपरिणाम हैं। पदार्थों की विभिन्न अवस्थाएँ प्रतिपल विपरिणामों में घटित हो रही हैं।

(३) अशुभानुप्रेक्षा—जो शुभ नहीं वह अशुभ है। जो उत्तम नहीं वह अपवित्र है। अशुद्ध शब्द ही अशुभता का परिचायक या वाचक है।

(४) अपायानुप्रेक्षा—मन-वचन-काया के योग से आस्रव के द्वारा ही इन योगों को अशुभ से शुभ की ओर प्रवृत्त करना अपायानुप्रेक्षा है।

ध्यान के विषय में उपर्युक्त विवरण अत्यन्त संक्षेप में वर्णन किया गया है। ध्यान के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, आगम तथा आगमेतर ग्रंथों में प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त विद्वान् आचार्यों ने भी ध्यान के सम्बन्ध में बहुत लिखा है जिससे ध्यान विषयक सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

भगवान् महावीर की साधना—मौन, ध्यान एवं कायोत्सर्ग—

आत्मसाक्षात्कार के लिए ध्यान ही एकमात्र उपयुक्त साधन है। भगवान् ने ध्यान की निर्वाध साधना के लिए आत्मदर्शन का अवलम्बन लिया। भगवान् महावीर ने सालम्बन और निरावलम्बन दोनों ही प्रकार के ध्यान का प्रयोग किया। वे एक प्रहर तक अनिमेष दृष्टि से ध्यान करते रहे, इससे उनका मन एकाग्र हुआ। ध्यान के लिए भगवान् नितान्त एकान्त स्थान का चयन करते हुए खड़े होकर तथा बैठकर दोनों ही स्थितियों में ध्यान

करते थे। पद्मासन, पर्यंकासन, वीरासन, गोदोहिकासन तथा उत्कटिका इन्हीं आसनों पर ध्यान सम्पन्न किया। भगवान् यह बात अच्छी तरह जानते थे कि वाक् और स्पंदन का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। इसीलिए ध्यान से पूर्व मौन रहने का संकल्प कर लेते थे। कायिक, वाचिक, मानसिक जिस ध्यान में भी लीन होते, उसमें रहते थे। द्रव्य या पर्याय में किसी एक पर स्थित हो जाते। उनकी ध्यान मुद्रा बड़ी प्रभावशाली होती थी। एक स्थान पर आचार्य हेमचन्द्र लिखते हैं—भगवान् तुम्हारी ध्यान मुद्राएँ कमल के समान शिथिलीकृत शरीर और नासाग्र पर टिकी हुई स्थिर आँखों में साधना का जो रहस्य है वह सबके लिए अनुकरणीय है।

पेढाल ग्राम के पलाश नामक चैत्य में एक रात्रि की प्रतिमा की साधना की। तीन दिन का उपवास प्रारम्भ में किया। तीसरी रात को कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। दोनों पैर सटे हुए थे और उनसे सटे हुए हाथ नीचे की ओर झुके हुए थे। स्थिर दृष्टि थी। किसी एक पुद्गल (बिन्दु) पर स्थिर और स्थिर इन्द्रियों को अपने-अपने गोलकों में स्थापित कर ध्यान में लीन हो गये।<sup>1</sup>

सानुसट्टिय ग्राम में भद्र प्रतिमा की साधना प्रारम्भ की। उन्होंने कायोत्सर्ग की मुद्रा में पूर्व-उत्तर-पश्चिम-दक्षिण चारों दिशाओं में चार-चार प्रहर तक ध्यान किया। इस प्रतिमा में उन्हें अत्यन्त आनन्द की भी प्रतीति हुई थी और इसी शृंखला में महाभद्र प्रतिमा की साधना की। चारों दिशाओं, चारों विदिशाओं, ऊर्ध्व और अधः दिशाओं में एक-एक दिन-रात तक ध्यान करते रहे। इस प्रकार सोलह दिन रात तक निरन्तर ध्यान प्रतिमा की साधना की।<sup>2</sup>

ध्यान की परम्परा अक्षुण्ण है। वेदों का प्रसिद्ध गायत्री मंत्र मन्त्र ध्यान की ओर ही संकेत करता है।

श्वेताश्वेतरोपनिषद् (१.११) में आत्मा को

ज्ञानवान् माना गया है। और उसकी मुक्ति क्लेशों के क्षीण होने से होती है। परन्तु कैवल्य की प्राप्ति तो ध्यान करने से ही होती है।

योगिराज अरविन्द के अनुसार हृदय चक्र पर एकाग्रता से ध्यान करने पर हृदय चैत्य (चित्त में स्थित) पुरुष के लिए खुलता है। अरविन्दाश्रम की माँ ने लिखा है, 'हृदय में ध्यान करे, सारी चेतना को बटोरकर ध्यान में डूब जाये इससे हृदय में स्थित ईश्वर का अंश जाग उठेगा। और हम अपने को भक्ति-प्रेम-शान्ति के अगाध सागर में पायेंगे।'

भ्रूमध्य पर एकाग्रतापूर्वक ध्यान करने से मानसिक चक्र उच्चतर चेतना के लिए खुल जाता है। उच्चतर चेतना विकसित होने से अहं का विलय होता है। आत्मा की दिव्य अनुभूति से हमारा तारतम्य (सम्पर्क) हो जाता है।

महर्षि रमण के अनुसार यदि आप ठीक से ध्यान करते हैं तो परिणामस्वरूप एक अलौकिक विचारधारा उत्पन्न होगी और वह धारा आपके मन में निरन्तर प्रवाहित होती रहेगी चाहे आप कोई भी कार्य करें। इसीलिए महर्षि रमण कर्म और ज्ञान में कोई तात्त्विक भेद नहीं मानते।

#### सन्दर्भ

- १ आवश्यक नियुक्ति गाथा ४८ आवश्यक चूर्ण पूर्व भाग पृष्ठ २०१
- २ आवश्यक चूर्ण पूर्व भाग पृष्ठ ३००



जह उज्जइ तणकट्ठं जालामालाउलेण जलणेण ।  
तह जीवस्स वि उज्जइ कम्मरयं ज्ञाण जोएण ॥

—कुवलयमाला १७९

जिस तरह तृण या काष्ठ को [अग्नि की ज्वाला जला डालती है वैसे ही ध्यानरूप अग्नि से जीव कम्मरज को भस्म कर देता है।